Volume-2, No. II, Aug-2015, pp.107-108

अनेकान्तवाद : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ0 अम्बरीश राय, सहायक आचार्यः दर्शनशास्त्र,
रामानन्द शोध पीठ
जे.आर.एच.वि.वि., चित्रकूट उ.प्र. भारत

'अनेकान्त' शब्द अनेक और अन्त पदों के योग से बना है। 'अनेक' का अर्थ होता है– 'एक नहीं, एक से ज्यादा, या 'बहुत से'। 'अन्त' का अर्थ होता है– 'सीमा, निश्चय, प्रकार, वृत्ति,[1] निष्कर्ष, उद्देश्य इत्यादि।[2] संस्कृत हिन्दी कोश में अनेकान्त का अर्थ परिवर्त्य, अनिश्चित, अस्थिर और सामाजिक इत्यादि किया गया है। इन सभी अर्थों पर विचार करने और जैन संदर्भों के अवलोकन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि जैन सम्प्रदाय में प्रयुक्त अनेकान्त का अर्थ एक से ज्यादा निष्कर्ष, एक से ज्यादा अर्थ और एक से ज्यादा उद्देश्य ही है। अनेकान्तवाद से तात्पर्य वैसे सिद्धान्त से है जो ज्ञान के उद्देश्य, ज्ञान की विषयवस्तु और अर्थों की अनेकता में विश्वास करता है।

जैन दर्शन अनेक पदार्थों में विश्वास करता है। उसके प्रत्येक पदार्थ त्रिलक्षण सम्पन्न हैं। प्रत्येक पदार्थ में उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य गुण पाये जाते हैं।[3] ये पदार्थ के सामान्य लक्षण हैं। इनके अतिरिक्त पदार्थ में कुछ परिवर्तनशील गुण पाये जाते हैं। इन्हें पर्याय कहा जाता है।[4] पदार्थ नित्यगुणों और अनित्य पर्यायों का आश्रय है। इसलिए द्रव्य को नित्य और अनित्य दोनों कहा गया है। उदाहरण के लिए मृत्तिका से घट बनता है। इस घट बनने की प्रक्रिया में घट की उत्पत्ति होती है, मृत्तिका का नाम होता है। फिर भी घर में परिवर्तित रूप में मृत्तिका वर्तमान रहती है। इसी तरह प्रत्येक द्रव्य अविच्छिन्न रूप से नित्य नित्यात्मक और समन्वय विश्लेषणात्मक है। यह त्रिगुणात्मक द्रव्य अनेक पर्यायों को भी अपने अन्तर्गत समेटे रहता है। इसलिए जैन दर्शन में वस्तु को अनन्त धर्मात्मक[5] माना गया है।

साधारण मनुष्य किसी भी वस्तु को अपरोक्ष रूप से नहीं जान सकता है। उसे सभी वस्तुओं का परोक्ष ज्ञान होता है। परोक्ष ज्ञान में इन्द्रियाँ, मन और प्रकाश इत्यादि की आवश्यकता होता है। इन्द्रियों की अपनी सीमा है। एक इन्द्रिय केवल एक पयार्य को ग्रहण कर सकती है। उदाहरण के लिए श्रवणेन्द्रिय केवल शब्द, रसेन्द्रिय केवल रस, ध्राणेन्द्रिय केवल गंध, त्वकेन्द्रिय केवल स्पर्श और चक्षु केवल रंग को ही ग्रहण कर सकती है। मन इन्द्रियों द्वारा दिये गये प्रदत्तों के अनुसार ही निर्णय देता है। इस निर्णय प्रक्रिया में मन की अपनी सीमा होती है। वह अपनी स्थितियों से निरपेक्ष निर्णय नहीं दे सकता है। हम जो कुछ भी निर्णय देते हैं उसका कुछ उद्देश्य होता है क्योंकि जैन दर्शन का मानना है कि ज्ञान किसी उद्देश्य का साधन मात्र है। इसलिए किसी भी कथन को ऐकान्तिक नहीं माना जा सकता है, बल्कि प्रत्येक कथन को 'नय' के रूप में ग्रहण किया जाना चाहिए।

नय ज्ञाता का अभिप्राय विशेष है जिससे वस्तु को एक देश ग्रहण किया जाता है। सापेक्षतया नय को भी प्रमाण माना गया है किन्तु नय की परिस्थितियों को ध्यान में नहीं रखने पर नयाभास की संभावना रहती है। जैन सम्प्रदाय में सात नय माने गये हैं। वे हैं–

(1) नैगम नय– जब हम वस्तुओं के अत्यन्त सामान्य, व्यावहारिक रूप में वर्णन करते हैं जबकि हम उनकी सत्ता को एक सामान्य या व्यापक धर्म या लक्षण के रूप में या एक विशिष्ट धर्म के रूप में नहीं देखते हैं। इस स्थिति में हम वस्तु को केवल उस रूप में देखते हैं जिस रूप में वे प्रथम दृष्टि में हमारे सामने आती हैं।[6] हम उसके विशिष्ट गुणों की उपेक्षा करते हैं। जैसे– अगर हमारे हाथ में एक पुस्तक है और पूछा जाता है कि क्या आपका हाथ खाली है तो हम यह कहकर उत्तर देते हैं कि नहीं, मेरे हाथ में कुछ है।

(2) संग्रह नय– संग्रह नय का अर्थ है किसी वस्तु को अत्यंत सामान्य दृष्टिकोण से देखना। इस स्थिति में हम सभी वस्तुओं को 'सार' के रूप में वर्णित करते हैं।[7] यह समस्त वस्तुओं का एक व्यापक लक्षण है। दूसरे शब्दों में अनेक पर्यायों को एक द्रव्य के रूप से या अनेक द्रव्यों को सादृष्यमूलक एकत्व रूप में ग्रहण करने वाला संग्रह नय कहलाता है। यहाँ हम केवल एक धर्म पर ज्यादा जोर देते हैं और अन्य से उदासीन रहते हैं।

(3) व्यवहार नय– किसी वस्तु का वास्तविक अर्थ उसके वास्तविक, व्यावहारिक अनुभव के आधार पर ही लिया जाना चाहिए। अनुभवों के संग्रह के द्वारा ग्रहण किये गये विधिपूर्वक, अविसंवादी और वस्तुस्थितिमूलक भेद करने वाला व्यवहार नय है।[8] यह नय लोकसिद्ध व्यवहार के अनुकूल होता है।

(4) ऋजुसूत्र नय– एक द्रव्य में भी कालक्रम में पर्याय भेद होता है। वर्तमान का अतीत और अनागत से कोई

सम्बन्ध नहीं है। यह विचार ऋजुसूत्र नय कहलाता है।[9] यह नय वर्तमान क्षणवर्ती शुद्ध अर्थ पर्याय को ही ग्रहण करता है।

(5) शब्द नय– काल, कारक, लिंग, संख्या के भेद से शब्द भेद होने पर उनके विभिन्न अर्थों को ग्रहण करने वाला 'नय' शब्द नय कहलाता है।[10] यह शब्द के शाश्वत अर्थ का विरोधी सिद्धान्त है। एक ही शब्द के भिन्न–भिन्न अर्थ हो सकते हैं।

(6) समाभिरूढ़ नय– एक काल, एक लिंग तथा एक संख्या वाचक शब्द के भी अनेक पयार्यवाची होते हैं।[11] समाभिरूढ़ नय उन प्रत्येक पर्यायवाची शब्दों को अर्थभेद स्वीकार करता है।

(7) एवम्भूत नय– जो द्रव्य जिस पर्याय (क्रिया) से परिणत हो तो उस समय उसको उसी रूप में ग्रहण करने वाला एवम्भूत नय है।[12] जैसे गाय को तभी गाय कहा जाएगा जब वह गमन करे। अगर उसका पैर टूट गया है तो उसे लंगड़ी गाय कहना ज्यादा उचित है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि शब्दों या नयों के अर्थ या अन्त एक तरफ अनेक हैं तो दूसरी तरफ सूक्ष्म भी हैं। सारे गुणों और परिस्थितियों को ध्यान में नहीं रखा जा सकता है। ऐसे में नयाभास की संभावना बनी रहती है। इसलिए प्रत्येक नय के साथ स्यात् शब्द के प्रयोग की राय जैन सम्प्रदाय में दी गई है। सात नयों के साथ अलग–अलग स्यात् शब्द के प्रयोग से सप्त भंगी नय बनता है।

'स्यात्' शब्द संस्कृत की अस् धातु का विधिलिंग रूप हैं इसका अर्थ है– होना चाहिए, हो सकता है या शायद।[13] इस सिद्धान्त का तात्पर्य है कि किसी भी वस्तु को अनेक दृष्टिकोणों से देखा जाता है। प्रत्येक दृष्टिकोण का एक निष्कर्ष प्राप्त होता है। वस्तु का वास्तविक स्वरूप इनमें से किसी के द्वारा भी अभिव्यक्त नहीं होता है क्योंकि उसमें जो वैविध्य वर्ममान रहता है उस पर सभी विधेय लागू हो सकते हैं। अतः प्रत्येक कथन असल में सोपाधिक कथन मात्र होता है। एकान्त विधान और एकान्त निषेध दोनों गलत हैं। जैन सम्प्रदाय के विचार से तत्त्व इतना जटिल है कि उसके बारे में प्रत्येक मत अंशतः ही सही है लेकिन पूर्णतः कोई भी सही नहीं है। उसका सीधे और एक वाक्य में वर्णन संभव नहीं है। फिर भी अंशतः ही सही कथनों की एक श्रृंखला के द्वारा किसी एक से अपने को एकान्त रूप में न बाँधते हुए हमारा उसे बता सकना असंभव नहीं है। जैन सम्प्रदाय के अनुसार ये सात कथन है–

(1) स्यात् अस्ति (2) स्यात् नास्ति (3) स्यात् अस्ति च नास्ति (4) स्यात् अवक्तव्यम् (5) स्यात् अस्ति च अवक्तव्यम् (6) स्यात् नास्ति च अवक्तव्यम् (7) स्यात् अस्ति च नास्ति च अवक्तव्यम्। ये सातों कथन आपस में मिलकर सत्ता के बारे में सम्पूर्ण कथन कर सकते हैं।[14] इससे किसी भी प्रकार की ऐकांतिकता का आरोप नहीं लगाया जा सकता है।

अनेकान्तवाद की यह अवधारणा जैन सम्प्रदाय का भाषा दर्शन है। यह विचार समकालीन दार्शनिक दारिदा के विचारों के समकक्ष प्रतीत होता है। दारिदा का मानना है कि प्रत्येक कथन में अनेक अर्थ निहित रहते हैं। कथन का प्रत्येक शब्द अपने आप में एक कहानी होती है। जो पाठक जिस सीमा तक उसके अर्थ को पकड़ पाता है उसी सीमा तक उसके अर्थ को समझ पाता है। दारिदा किसी कथन के अर्थ को समझने की विधि की व्याख्या करते हैं। इस विधि में निम्न कार्य की आवश्यकता है–

(i) शब्दों को अलग करना
(ii) शब्दों के संदर्भ को समझना
(iii) उपेक्षित शब्दों पर ज्यादा ध्यान देना
(iv) शब्दों के साथ सकारात्मक संदेह जोड़ना
(v) शब्दों को उनकी संरचना के साथ जोड़कर उनका अर्थ करना

इस तरह की प्रक्रिया को लागू कर देखा जाता है तो लगता है कि 'नथिंग इज आऊट ऑफ द टेक्स्ट'।[15] जैन सम्प्रदाय भी, मेरे विचार में, अपने अनेकान्तवाद की अवधारणा के माध्यम से इसी तथ्य को अभिव्यक्त करना चाहता है।

इस प्रकार प्रस्तुत लेख में अनेकान्तवाद की व्याख्या के लिए एक विशेष दृष्टिकोण से विचार किया गया है और यह स्थापित करने का प्रयास किया गया है कि जैन अनेकान्तवाद की अवधारणा भाषा दर्शन की अवधारणा है। यहाँ यह कदापि नहीं माना गया है कि यह स्थापना निर्दोष और सर्वांगपूर्ण है। इस प्रयास की मात्र इतनी उपयोगिता है कि इससे विचार को एक नयी दिशा मिलेगी।

सन्दर्भ

1. संस्कृत हिन्दी कोष, वामन शिवराम आप्टे, मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली 1993.
2. संस्कृत–इंग्लिश–डिक्शनरी; सर मोनियर विलियम्स, औरियेन्ट, 40 दिल्ली।
3. तत्त्वार्थाधिगसमूत्र, उमास्वाति, 5,30.
4. वही, 5,38.
5. सवार्थ सिद्धि, 1,33.
6. लंघीयस्लय, भट्ट अकलंक, श्लो0 13.
7. सर्वाथसिद्धि, 1.33.
8. कर्णिका, श्लो0 13.
9. लंघीयस्लय, श्लो0 44.
10. सवार्थसिद्धि, 1,33. नयकर्णिका, श्लो0 19.
11. भारतीय दर्शन का इतिहास; एस0एन0 दास गुप्त, राजस्थान हिन्दी ग्रं0 अ0 जयपुर 1988, पृ0 173.
12. भारतीय दर्शन की रूपरेखा, एम0 हिरियन्ना (अनु0 गोवर्धन भट्ट) राजकमल प्र0, दिल्ली 1993, पृ0 166.
13. ऑफ ग्रामेंटोलाजी; जैक्स डेरिडा (अनु0 गायत्री चक्रवती) हाकिंग्स यूनिवर्सिटी, प्रेस, 1977.